Anusanadhan: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Volume 5, Issue 3&4 - 2020, Pg. No. 18-22
Peer Reviewed Journal

Research Article

मनोरोग के निवारण में क्रियायोग की भूमिका

सचिन कुमार[1], अलका देवी[2], ऋतु त्यागी[3]

[1]अध्यक्ष, योग–षट्कर्मचिकित्सा एवं अनुसंधान केन्द्र पतंजलि आयुर्वेद हॉस्पिटल, हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत।
[2]योग प्रशिक्षिका, दि विजडम ग्लोबल स्कूल, हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत।
[3]योग चिकित्सक, CCRYN (आयुष मंत्रालय), दिल्ली, भारत।

DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202011

I N F O

E-mail Id:
drsachin51@gmail.com
Orcid Id:
https://orcid.org/0000-0003-3936-1770

Date of Submission: 2020-11-28
Date of Acceptance: 2020-12-07

सारांश

योग विद्या सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव कल्याण हेतु उपयोगी होती रही है। योग के द्वारा हमारे ऋषि मुनियों ने अध्यात्म जगत में उन्नति के शिखर को छुंआ है और मानव के बहुत से अनसुलझे रहस्यों को उजागर किया है। आध्यात्मिक उन्नति के साथ–साथ योग विद्या का मनुष्य के शरीर और मन के विकारों के निराकरण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आधुनिक युग में भी योग के अभ्यास से मनुष्य जीवन के सभी द्वन्द्वों से छुटकारा पा सकता है। महर्षि पतंजलि आदि ऋषियों ने मनुष्य को जीवन की समस्याओं से विचलित न होते हुए किस तरह से उनका समाधान किया जाये इसका ज्ञान सहज ही उपलब्ध करा दिया है। महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योग विद्या के अद्वितीय ग्रन्थ पतंजलि योग सूत्र में मानव जाति के कल्यणार्थ जो ज्ञान दिया है उसको उन्होंने सूत्रों की एक माला में मोतियों की तरह गुंथा है। प्रत्येक सूत्र अपने आप में सम्पूर्ण योग विद्या को समाये हुए है। इन्ही मोतियों मे से एक मोती ''तपः स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधान'' को महर्षि पतंजलि ने क्रियायोग के नाम से उल्लेखित किया है। इस सूत्र को जीवन में धारण करने से मनुष्य अपन सांसारिक जीवन के सम्पूर्ण द्वन्द्वों से लड़ते हुए भी जीवन आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग के ऊपर तीव्रता से गमन कर सकता है। और सम्पूर्ण शारीरिक एवं मानसिक विकारों से मुक्त हो सकता है।

मुख्य बिन्दुः मनोरोग, क्रियायोग, द्वन्द्व, शरीर शुद्धि, इन्दिय शुद्धि, निराहार ओ३म्, स्वाध्याय, उपांशु

प्रस्तावना

महर्षि पतंजलि ने मध्यमकोटि के साधकों के लिये क्रियायोग की पद्धति का उल्लेख किया है। यदि मनुष्य यमों का सेवन नहीं कर सकता, आसन और प्राणायाम में भी उसकी रुचि नहीं है, प्रत्याहार में उसका सामर्थ्य नहीं है तथा धारणा, ध्यान समाधि में उसका चित्त नहीं लगता तो ना लगे। यदि वह नियमों में से शौच और सन्तोष को भी निकाल दे तथा तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान का ही अभ्यास करे तो इससे भी अभीष्ट की प्राप्ति हो सकती है। मनोरोग की चिकित्सा के सन्दर्भ में क्रियायोग का विवेचन करना आवश्यक प्रतीत होता है। तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान का ही दूसरा नाम क्रियायोग है।[1] क्रियायोग के दो लाभ हैं– समाधि की सिद्धि और क्लेशों की दुर्बलता।[2]

क्रियायोग की व्युत्पत्ति

''क्रिया च योगश्च इति क्रियायोगः'' अर्थात् जहाँ क्रिया भी हो और योग भी हो उसे क्रियायोग कहते हैं। यह क्रियायोग की व्युत्पत्ति है, अथवा ''क्रियाभिः योगः क्रियायोगः'' अर्थात् क्रियाओं से योग का अभ्यास करना क्रियायोग है। यह भी क्रियायोग की व्युत्पत्ति हो सकती है। कहने का भाव यह है कि जिस योग में ज्ञान की अपेक्षा क्रिया की प्रधानता हो उसे क्रियायोग कहते हैं। पांचों यम ज्ञानप्रधान हैं। प्रत्याहार की सिद्धि भी ज्ञानस्वरूप होती है। धारणा, ध्यान, समाधि भी ज्ञानपूर्वक ही सिद्ध होते हैं। केवल तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ही क्रिया के द्वारा साध्य है। इसलिए इनका क्रियायोग नाम सार्थक होता है।

Copyright (c) 2020: Advanced Research Publications

तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान को क्रियायोग क्यों कहा जाता है?

तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान को क्रियायोग क्यों कहा जाता है? यह विषय युक्तिपूर्वक विचारणीय है। इन तीनों में कुछ न कुछ शारीरिक, मानसिक और वाचिक क्रिया करनी पड़ती है इसलिए इसे क्रियायोग कहा जाता है। तप में शरीर क्रिया करता है। स्वाध्याय में वाणी क्रिया करती है और ईश्वरप्रणिधान में मन क्रिया करता है। शरीर से स्नान, आसन, प्राणायाम, शीत और उष्ण का सहन, नंगे पाँव चलना, नंगे सिर रहना, शरीर में नाममात्र को कपड़ा पहनना, लम्बा पैदल चलना, भोजन आदि का त्याग कर देना आदि क्रियायें की जाती हैं। इसलिए तप शारीरिक क्रिया है। मन्दिर में भगवान् की प्रतिमा को स्नान कराना, धूप, दीप, नैवैद्य, चन्दन, पुष्प–फल आदि अर्पित करना, मन्दिर की सफाई करना, मन्दिर को जाने वाले मार्ग में झाडू लगाना आदि सभी क्रियायें शारीरिक तप के अन्तर्गत आती है।

स्वाध्याय में वाणी द्वारा ओ३म् का जप करना, वेद आदि शास्त्रों का अध्ययन करना, विष्णुसहस्रनाम, भागवत, रामायण आदि ग्रन्थों का ऊँचे स्वर में पाठ करना, भगवान् के नामों को जोर–जोर से बोलना, प्रवचन करना, और शिष्यों को पढ़ाना ये सब वाचिक क्रियायें कहलाती हैं।

ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखना, उसके कार्यों में हस्तक्षेप न करके उनमें श्रद्धा रखना, गुरु के द्वारा पढ़ाये गये पाठ पर एकान्त में मनन करना तथा निष्कामभाव से कर्म करते हुए अपने समस्त कर्मों को परमात्मा को सर्मपित कर देना मानसिक क्रिया कहलाती है। इसलिए तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान को क्रियायोग कहा जाता है।

तप

तप की सामान्य परिभाषा है द्वन्द्वों को सहन करना।[3] भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, सुख–दुःख, सम्पत्ति–विपत्ति, राग–द्वेष, मान–अपमान आदि साथ रहने वाले भावों को द्वन्द्व कहते हैं। द्वन्द्व मन में आकर खलबली मचाते हैं और शान्त चित्त को क्षणभर में अशान्त कर देते हैं। सज्जनों के आने से प्रसन्नता होती है। किन्तु दुर्जनों की उपस्थिति से मन में क्षोभ उत्पन्न होता है। सज्जन और दुर्जन दोनों की उपस्थिति को समान रूप से सहन करना तप कहलाता है।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि तप का अनुष्ठान दुर्बलों के वश की बात नहीं है। वीर पुरुष ही तप कर सकते हैं। शरीर और मन से बलिष्ठ और सुदृढ पुरुष ही तप के अधिकारी होते हैं। तप से शुद्धि शीघ्र होती है। यह तप ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी सभी के लिए आवश्यक होता है। बिना तप के कार्य सिद्धि नहीं होती। तप के बल पर ही ऋषि लोग फल, कन्दमूल और वायु का सेवन करते हुए योगबल से तीनों लोकों को एक स्थान पर बैठे–बैठे देख लेते थे।[4] एक विद्यार्थी तप से ही पूजा–पाठ, वेदाध्ययन एवं कर्मकाण्ड करता है। तप तीन प्रकार का है– शारीरिक, वाचिक और मानसिक। ये तीनों ही तप चित्त को तो शुद्ध करते ही हैं, साथ ही शारीरिक दोषों का भी शमन करते हैं।[5]

तप के प्रकार

शारीरिक तप

शरीर से सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास और सुख–दुःख को सहन करते हुए अपने इष्टदेव की आराधना करना, ब्राह्मणों का सम्मान करना, अपने गुरुओं की सेवा करना, विद्वानों की पूजा करना शरीर को शुद्ध रखना, दुष्टों के साथ भी सरलता और विनम्रता का व्यवहार करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना तथा स्वयं कष्ट सहते हुए भी किसी की हिंसा न करना शारीरिक तप कहलाता है।[6]

वाचिक तप

प्रिय, हितकारी और दूसरों को सुख देने वाले वचन बोलना और परमात्मा के नामों का जप करना वाचिक तप कहलाता है।[7] जैसे प्रिये और हितकारी वचन बोलना वाचिक तप है उसी प्रकार मौन रहना भी वाचिक तप है। जब कोई हमें गाली देता है या हमारा अपमान करता है अथवा हमें हानि पहुंचाता है तो हमारे मुख से उसके लिए तुरन्त प्रतिक्रिया के रूप में दुर्वचन निकलते हैं। दुर्वचन न बोलकर केवल चुप रहना भी वाचिक तप कहलाता है।

मानस तप

मन को शान्त रखना, मन में शीतलता रखना, अन्तःकरण पर संयम रखना, शरीर पर नियन्त्रण रखते हुए विचारों को शुद्ध रखना मानस तप कहलाता है।[8]

उपर्युक्त तीनों प्रकार के तपों में मानस तप सबसे सरल प्रतीत होता है। किन्तु सबसे कठिन यह मानस तप ही है क्योंकि दुर्जन से अपमानित होकर मनुष्य भले ही वाणी से कुछ न कहे, शरीर से प्रतिक्रिया न करे, किन्तु मन में दुर्जन के प्रति अन्दर ही अन्दर विद्वेष अवश्य उत्पन्न होता है। इस विद्वेष पर नियन्त्रण रखना और सब प्रकार के वैरभाव से चित्त को दूषित न होने देना मानस तप है। चूँकि यह तप किसी को दिखाई नहीं देता इसलिए यह बड़ा कठिन तप माना जाता है।

तप का लक्ष्य

तप क्यों किया जाता है? इसका मुख्य लक्ष्य क्या है? इस बात को जानना योगसाधक के लिए आवश्यक है। पतंजलि के अनुसार तप के दो लक्ष्य हैं– शरीर शुद्धि और इन्द्रिय शुद्धि। तप के अनुष्ठान से शरीर की अशुद्धि दूर होकर शरीर बलवान और निरोग होता है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ और मन के मल तप करने से धुल जाते हैं। इन्द्रियों के विकार नष्ट हो जाते हैं। कोई भी निन्दनीय आचरण इन्द्रियों से नहीं होता। यह तप का दूसरा फल है।[9]इसके अतिरिक्त महाराज मनु ने कुछ अन्य लाभ भी बतायें हैं। मनु कहते हैं कि यदि संकटों के सागर को पार करना हो, किसी कठिन कार्य को करने की शक्ति प्राप्त करनी हो तो तप करना चाहिए। उस तप से समस्त कार्य सिद्ध हो जाते हैं। क्योंकि तप का उल्लंघन करने का सामर्थ्य भगवान् में भी नहीं है। उन्हें तपस्वी भक्त का कष्ट दूर करने के लिए तुरन्त नंगे पाँव ही दौड़कर आना पड़ता है।[10]

मनोरोग निवारण में तप की उपयोगिता

तप का सम्बन्ध मुख्यरूप से शरीर से है। शरीर के साथ इन्द्रियां और मन सदैव जुड़े रहते है। जब शरीर पुष्ट होता है तो इन्द्रियाँ भी प्रबल रहती हैं। जब शरीर कृश होता है तो इन्द्रियों का वेग भी दुर्बल हो जाता है। शरीर भोजन से पुष्ट होता है। अन्न में एक प्रकार का नशा होता है जिसे खाकर मन और इन्द्रियां मदमत्त हो जाती हैं। जब भोजन के अभाव में इन्द्रियां दुर्बल होंगी तो मन भी दुर्बल होगा। मन सदैव इन्द्रियों का ही अनुवर्तन करता है। इसलिए मानसिक दोषों की शान्ति के लिए तप अनुष्ठान आवश्यक कहा गया है। इसलिए योगी के लिए तप का अनुष्ठान आवश्यक कहा गया है। इसलिए योगी के लिए अल्प भोजन, नंगे पाँव व नंगे सिर घूमना, वस्त्र न पहनना, सर्दी–गर्मी को सहना तथा निराहार रहकर शरीर को कृश करना आवश्यक बताया गया है। मनोरोगों की शान्ति के लिए तप ही सर्वोत्तम उपाय है।

स्वाध्याय

क्रियायोग का दूसरा नाम स्वाध्याय है– ''स्वस्य अध्ययनम् स्वाध्यायः'' अर्थात् आत्मा के अध्ययन का नाम स्वाध्याय है। स्वाध्याय एक वाचिक क्रिया है। स्वाध्याय की चार परिभाषाएं व्यासभाष्य में दी गयी हैं। इन चारों में प्रथम दो का सम्बन्ध वाणी से है और शेष दो का सम्बन्ध मानसिक क्रिया से है।

स्वाध्याय की प्रथम परिभाषा है–''ओ३म् आदि परमात्मा के पवित्र नामों का जप स्वाध्याय है।'' परमेश्वर का कोई वास्तविक नाम नहीं होता। उपासना के लिए उसके अनेक नाम रख लिए गये हैं। ओ३म्, हरि, कृष्ण, वासुदेव, संकर्षण, केशव, विष्णु, पुण्डरीकाक्ष, पुरुषोत्तम आदि परमात्मा के पुर्लिंग नाम हैं तथा उमा, दुर्गा, काली, चण्डिका, भैरवी, चामुण्डा आदि स्त्रीलिंग नाम हैं। इसके अतिरिक्त शिव, रुद्र, महेश्वर, कपाली, पिनाकी आदि तान्त्रिक नाम हैं। इनमें से किसी भी नाम का अथवा सभी नामों का जप करना स्वाध्याय कहलाता है।[11]

दूसरी परिभाषा के अनुसार– ''मोक्षपरक शास्त्रों का अध्ययन करना भी स्वाध्याय कहलाता है।'' गीता, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, भागवत, देवीभागवत, विष्णुसहस्रनाम आदि ग्रन्थ मोक्षपरक हैं। इनके अध्ययन से आत्मा का ज्ञान होता है। अतः इन ग्रन्थों का अध्ययन स्वाध्याय कहलाता है।[12]

तीसरी परिभाषा के अनुसार– ''अपने समस्त शुभ–अशुभ कर्मों को परमपिता परमेश्वर के चरणें में अर्पित कर देना भी स्वाध्याय कहलाता है।'' मनुष्य अगर अपने आपको केवल माध्यम मान ले और कर्ता ईश्वर को तो ऐसा समझना भी स्वाध्याय कहलाता है।[13]

चतुर्थ परिभाषा में व्यासदेव ने कहा है कि–''अपने द्वारा किये गये समस्त कर्मों के फल का त्याग कर देना स्वाध्याय कहलाता है।'' इसमें साधक का भाव यह होना चाहिए कि मुझे न सुख चाहिए मुझे न दुःख चाहिए। मेरे द्वारा किये गये सभी कर्मो का फल ईश्वर ही भोगेगा। भगवान कहते हैं जो यह सोचकर सम्पूर्ण धर्म और कर्म को मुझे दे देता है तो फिर उनका फल मैं ही भोगता हूँ, मनुष्य नहीं। यह भी स्वाध्याय का ही स्वरूप है।[14]

स्वाध्याय से इष्ट देवता की प्राप्ति

स्वाध्याय का फल बताते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं कि स्वाध्याय से इष्ट देवता का साक्षात्कार होता है।[15] इष्ट देवाताओं में चार देवताओं की गणना की जाती है– अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण। किसी के लिए वशिष्ठ, विश्वामित्र, नारद, कपिल, गौतम, व्यास आदि ऋषि इष्ट हो सकते हैं। किसी के लिए हनुमान्, गरुड़, दत्तात्रेय, सनकादि सिद्ध पुरुष इष्ट हो सकते हैं और किसी के लिए साक्षात् परमात्मा ही इष्ट हो सकता है। ये सभी देव, ऋषि और सिद्ध पुरुष सूक्ष्म रूप में भक्तों का कल्याण करने के लिए त्रैलोक्य में विचरण करते रहते हैं। जब भक्त जप द्वारा, अध्ययन–समर्पण द्वारा और कर्मफल के त्याग द्वारा इनका आह्वान करता है तो ये देवता आदि उसको साक्षात् दर्शन देते हैं और उसके कार्यों का समाधान करते हैं।[16]

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि स्वाध्याय से इष्ट देवता की प्राप्ति किस प्रकार सम्भव है? देवता दूर रहते हैं और उनका शरीर भी अदृश्य होता है तो फिर वे भक्त के सामने साक्षात् किस प्रकार उपस्थित हो सकते हैं?

इसका उत्तर यह है कि इष्ट देवता का साक्षात्कार दो प्रकार से होता है। प्रथम भावना के द्वारा और दूसरा देवताओं की इच्छा के द्वारा। जब एक भक्त निरन्तर स्वाध्याय करते हुए अपने इष्ट देवता का ध्यान करता है, उसी का स्मरण करता है और उसी का वार्तालाप करता है तो भक्त की उस भावना के आधार पर कभी–कभी ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह देवता साक्षात् सामने खड़ा हो। भावना का यह सामर्थ्य है कि वह दूरस्थ वस्तु को भी निकटस्थ बना देती है। चन्द्रमा आकाश में है किन्तु उसे देखकर दूरस्थ कुमुद खिल उठता है और सूर्य को देखकर कमल विक्षिप्त हो जाता है। तुलसी ने इसी बात को स्वीकार किया है–

- कुमोदिनी जलहर बसे, चन्दा बसे अकास।
- जो जाही को भावता, सो ताही के पास।।

स्वाध्याय से मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति

स्वाध्याय मन के बिना सम्भव नहीं होता। स्वाध्याय में सर्वप्रथम मोक्षशास्त्रों का अध्ययन किया जाता है। जब तक उस अध्ययन में चित्त पूर्णरूप से डूब नहीं जाएगा तब तक स्वाध्याय सिद्ध नहीं होगा। जब मन स्वाध्याय में लगा रहेगा तथा अपने इष्टदेव की भावना में लीन रहेगा तो रोगों को मन में प्रवेश का अवकाश ही नहीं मिलेगा।

स्वाध्याय के बल पर ही रत्नाकर डाकू वाल्मीकि ऋषि बन गये थे। इष्ट देवता को प्रसन्न करके सावित्री ने अपने पति सत्यवान को मृत्यु के मुख से छुड़ा लिया था। स्वाध्याय के बल पर अपाला ने इन्द्र को प्रसन्न करके अपना कुष्ठ रोग ठीक कर लिया था। महाकवि मयूर भट्ट ने सूर्य की उपासना से परम स्वास्थ्य लाभ किया था। पण्डितराज जगन्नाथ ने गंगा की स्तुति करके ब्राह्मण जाति में अपना पुनः स्थान प्राप्त किया था। कालिदास ने महाकाली की आराधना से महाकवि होने का वरदान प्राप्त किया था। स्वाध्याय की महिमा से हमारा इतिहास भरा पड़ा है।

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202011

ईश्वरप्रणिधान

ईश्वरप्रणिधान का विवेचन हम नियमों के सन्दर्भ में कर आये हैं। यहाँ इतना समझ लेना आवश्यक है कि ईश्वर में आस्था निस्वार्थ होनी चाहिए। जो लोग धनप्राप्ति के लिए रोग निवृत्ति के लिए, यश प्राप्ति के लिए, पद प्रतिष्ठा के लिए, पुत्र प्राप्ति के लिए अथवा सुन्दर पत्नी प्राप्त करने के लिए ईश्वर का वन्दन करते हैं वह ईश्वरप्रणिधान नहीं है। वह तो व्यवसाय हुआ। उसमें किसी पदार्थ की कामना नहीं की जाती। उसमें तो परमात्मा की इच्छा को ही सर्वोपरि रखकर चलना पड़ता है। वह चाहे सुख दे या दुःख, सम्पत्ति दे या विपत्ति सबको ईश्वर इच्छा समझकर स्वीकार करना पड़ता है। इसी का नाम ईश्वरप्रणिधान है। इसका विवेचन गीता में भगवान् के द्वारा किया गया है।[17] शाण्डिल्य में ईश्वरप्रणिधान को ईश्वर पूजा नाम दिया गया है। प्रसन्न स्वभाव से यथाशक्ति विष्णु आदि देवताओं की पूजा करना ईश्वरपूजन कहलाता है।[18]

प्रणव और प्रणव जप का स्वरूप

जप ईश्वरप्रणिधान का साधन है। अर्थात् जप के माध्यम से ईश्वर में आस्था को दृढ किया जाता है। यह जप क्या है? यह जानना आवश्यक है। 'ज' और 'प' इन दो अक्षरों से मिलकर जप शब्द बना है। 'ज' का अर्थ है विजय प्राप्त करना है 'प' का अर्थ है पालन करना। जिसके उच्चारण से लोक में विजय प्राप्त हो और जिसके उच्चारण से जीवन की रक्षा होती हो, उस उच्चारण को जप कहा जाता है। ''जयते पालयति च इति जपः''–यही जप शब्द की व्युत्पत्ति है। जप का अर्थ है किसी विशिष्ट मन्त्र का बार–बार उच्चारण करना। शाण्डिल्य में कहा गया है कि विधिपूर्वक गुरु के द्वारा उपदिष्ट वेदोक्त मन्त्र का अभ्यास करना जप कहलाता है।[19] यूँ तो वेद मे अनेक मन्त्र हैं किन्तु सबका जप करना सम्भव नहीं है। किसी एक सर्वश्रेष्ठ मन्त्र का ही जप करना चाहिए। समस्त मन्त्रों में 'ओ३म्' को सर्वश्रेष्ठ बीज मन्त्र माना जाता है। इसको प्रणव भी कहते हैं। इसको प्रणव इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह सदा नया–नया बना रहता है। हजारों लाखों तथा करोड़ों बार उच्चारण करने पर भी यह पुराना नहीं होता। इस मन्त्र में तीन अक्षर हैं– अकार, उकार, मकार। इन तीनों मात्राओं में तीनों देव, तीनों लोक, तीनों वेद, तीनों अग्नियां तथा तीनों मात्राएं छिपी हुई हैं। 'ओ३म्' साक्षात् शब्दब्रह्म है।[20] इस प्रणव के जप से ईश्वरप्रणिधान पुष्ट होता है।

प्रणव जप के भेद

तप के तीन भेद हैं– शब्दात्मक, उपांशु और मानस। शब्दात्मक जप को वाचिक जप भी कहा जाता है। जब मन्त्र का उच्चारण इतने जोर से किया जाता है कि दूसरे भी उसे सुन सकें तो यह वाचिक जप कहलाता है। इसमें वैखरी वाणी काम करती है। वाणी चार प्रकार की है– परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी। परा वाणी साक्षात् परब्रह्म है। पश्यन्ती वाणी सिद्ध योगियों को मिलती है। मध्यमा मानस वाणी है और वैखरी वाणी से शब्दात्मक जप होता है। जब केवल होंठ हिलते हैं शब्द नहीं होता तो ऐसा जप उपांशु कहलाता है। किन्तु जब होठ भी नहीं हिलते जप मन में किया जाता है तो मानस जप कहलाता है।

शब्दात्मक जप का इतना ही लाभ है कि आपकी वाणी पवित्र हो जाती है। शब्दों का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। उससे हजार गुणा फल उपांशु जप का होता है। उपांशु जप से वाणी तो पवित्र होती ही है मनोवांछित पदार्थों की प्राप्ति भी होती है। उपांशु जप से करोड़ों गुणा फल मानस जप का होता है। त्रैलोक्य उसके वश में हो जाता है। उसकी वाणी अमोघ होती है। यदि वह किसी दुर्जन को कह दे कि तू सज्जन हो जा तो वह तुरन्त सज्जन हो जाता है। समस्त पदार्थ मानस जप करने वाले के पीछे दौड़ते हैं। किन्तु जप करने वाला उन वस्तुओं को देखना भी पसन्द नहीं करता। वह बाह्य पदार्थों से निष्काम हो जाता है।[21]

प्रणव जप से मानसिक स्वास्थ्य

मानसिक स्वास्थ्य तो प्रणव जप का बहुत तुच्छ फल है। जब समस्त संसार ही कर्त्ता के अधीन हो जाता है तो मानसिक स्वास्थ्य कौन सी बड़ी बात है। जप कर्त्ता का मन इतना बलवान हो जाता है कि चाहे उसका शरीर रोगी हो जाए, घर में आग लग जाए, पुत्र, पत्नी व पति भी मर जाये और सारा संसार शत्रु बन जाए फिर भी उसका मन लेशमात्र भी विचलित नहीं होता। यह तो जप का लौकिक लाभ है। जप करने वाला तो दूसरों के चित्त का समाचार भी जान लेता है। यदि वह किसी को स्वस्थ, सुखी और सम्पन्न होने का आशीर्वाद दे दे तो वह उसी क्षण सुखी और सम्पन्न हो जाता है। पर्वत के समान दुःख भी उसे तृण के समान प्रतीत होता है।

समीक्षा

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि क्रियायोग को जीवन में धारण करने से (तप स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान) समस्त योग विघ्नों का नाश होता है और मनोरोग समूल नष्ट हो जाते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। क्रियायोग से आध्यात्मिक लाभ तो होता ही है भौतिक सुखों की प्राप्ति भी होती है। यह केवल अतिशयोक्ति नहीं है। हमने स्वयं ऐसे सिद्ध पुरुषों को देखा है जिन्होंने तप स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान के बल पर असीम लक्ष्मी को प्राप्त किया है। हमने अपनी आँखों से देखा है कि जिसके पास एक पैसा भी नहीं वह प्रतिदिन लाखों लोगों को खाना खिलाते हैं। शरीर पर धोती का एक टुकड़ा पहनने वाला व्यक्ति हजारों लोगों को वस्त्र बाँटता है। जमीन पर लेटा हुआ व्यक्ति धर्मशालाओं का किराया देता है। स्वयं पढालिखा नहीं है किन्तु दूसरों को बहुमूल्य पुस्तकें खरीदकर बाँटता है। इतना पैसा उस फक्कर के पास कहाँ से आया? उनके पास रहने वाले भी नहीं जानते। यह प्रभाव क्रियायोग की साधना से प्राप्त होता है।

सन्दर्भ

1. तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः। पा.यो.सू.– 2/1।
2. समाधि भावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च। पा.यो.सू.– 2/2।
3. तपो द्वन्द्वसहनम्। व्यासभाष्य– 2/32।
4. ऋषयःसंयतात्मानः फलमलानिलाशनाः। तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचरचरम्।। मनुस्मृति– 11/236।
5. तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयस्करं परम्। तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते।। मनुस्मृति– 12/104।
6. श्रीमद्भगवद्गीता– 17/14।

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202011

7. अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्। स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।। श्रीमद्भगवद्गीता–17/15।
8. मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः। भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।। श्रीमद्भगवद्गीता–17/16।
9. कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।। पा.यो.सू.– 2/43।
10. यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुष्करम्। सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्।। मनुस्मृतिम– 238
11. स्वाध्यायः प्रणवादिपवित्राणां जपः। पा.यो.द. व्यासभाष्य–2/1
12. मोक्षशास्त्राध्ययनं वा। वही।
13. ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरार्पणम्। वही।
14. तत्फलसंन्यासो वा। वही।
15. स्वाध्यायादिष्ट देवतासंप्रयोगः। पा.यो.सू. 2/44
16. देवा ऋषयः सिद्धश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति कार्येचास्य वर्तन्त इति।। व्यासभाष्य 2/44
17. यत्करोषि यदश्नासि यज्जुंहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्। श्रीमद्भगवद्गीता– 9/27।
18. ईश्वरपूजनं नाम प्रसन्नस्वभावेन यथाशक्ति विष्णुरुद्रादिपूजनम्। शाण्डिल्योपनिषद्।
19. जपो नाम विधिवद्गुरुपदिष्टवेदाविज्ञद्धमन्त्राभ्यासः। वही।
20. तत्र देवास्रयः प्रोक्ता लोका वेदास्रयोऽग्नयः। वही।
21. उच्चैरुच्चारणं यथोक्तफलम्। आंशुसहस्रगुण्। मानसं कोटिगुणम्। शाण्डिल्योपनिषद्, प्रथम अध्याय।

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202011